शोध मंथन Vol. XV No.I Jan.-Mar.2024 ISSN: (P) 0976-5255 (e) 2454-339X
Impact Factor 8.870 (SJIF)

प्रसाद के काव्य में नवीन सांस्कृतिक उत्थान के स्वर

डा० कल्पना माहेश्वरी
असिस्टैण्ट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग
ए०के०पी० (पी०जी०) कॉलिज
खुर्जा (बुलन्दशहर) उ०प्र०
ईमेलः *kalpanakrj2020@gmail.com*

प्राप्तिः 23.02.2024
स्वीकृतः 24.03.2024

6

प्रसाद का समय पाश्चात्य संस्कृति और सभ्यता के धनधोर प्रभाव का युग था, वह ऐसा विज्ञान प्रभावी युग था जिसमें नृतत्व विज्ञान और मनोविज्ञान के साथ साथ डार्बिन के विकास वाद के अधार पर जीवन का भौतिक इतिहास प्रस्तुत होने लगा था, मूल तत्व के रूप में जड़तत्व को ही मान्यता मिलने लगी थी और विज्ञान इसी आधार पर भारतीय चिन्तन में युगान्तर प्रस्तुत करने लगा था। मार्क्स का द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद अपने उत्कर्ष पर विश्व के इतिहास की भौतिक व्याख्या कर रहा था तब बुद्धिजीव विदेशी संस्कृति के प्रभाव काल में जीवन के आत्मतत्वों का तिरस्कार होते देखकर प्रसाद की आत्मा तड़प उठी। बुद्धिवाद और वैज्ञानिकता के अतिरेक तथा हृदय की प्रवृत्ति श्रद्धा करूणा के अभाव में विश्व व्यापी अशांति देखकर कवि का संवेदनशील अन्तर विकल हो उठा। उधार ली हुयी अव्यावहारिक ह्रासोन्मुखी पाश्चात्य सभ्यता को भारतीय संस्कृति पर आरोपित होते देखकर उसकी व्यावहारिक, वैज्ञानिक तथा विकासोन्मुखी व्याख्या करने के लिये कवि तत्पर हो उठा और व्यकित तथा समाज में व्याप्त असंतुलन को संतुलित रूप देकर समन्वय स्थापित करने के लिये कवि की बुद्धि क्रियाशील होकर उन तत्वों की खोज में रत हो गयी जो इस मांगलिक कार्य में सहायक हो सके। भौतिकवाद की जड़ता में आनन्द की कामना करने वाले बुद्धिवादियों की विज्ञान की अति से विकृत मनीषा को उचित दिशा देने के लिये उन्होंने हद्रयवादी भारतीय संस्कृति के आत्मतत्वों से प्रेरणा ग्रहण की। उस समय हमारे देश के लोग विदेशी सभ्यता एवं संस्कृति के बाह्य एवं क्षणिक आकर्षण में अपनी सभ्यता एवं संस्कृति को भूल रहे थे। ऐसे संक्रान्तिकाल में ऐसे महान कलाकार की दिव्य एवं प्रमाणिक वाणी की आवश्यकता थी जो भूले हुये लोगों को कलात्मक ढंग से यह समझ सके कि तुम्हारा वास्तविक कल्याण एवं विकास उसी संस्कृति को अपनाने में है जो तुम्हारे देश की जलवायु, प्राकृतिक दशा तथा उपज के अनुकूल है यह कार्य उस युग में महान कलाकर प्रसाद की कृतियों द्वारा हुआ विशेषतः उनके महाकाव्य 'कामायनी' द्वारा। मनु जब तक हृदयवादी संस्कृति की प्रतीक श्रृद्धा को छोड़ बुद्धिवादी संस्कृति की प्रतीक इड़ा के मोहयाश में रहता है तब तक उसका कल्याण नहीं होता।''[1]

प्रसाद भारतीय इतिहास और संस्कृति के गहन अध्येता होने के कारण उसके प्राचीन, उपयोग और स्वस्थ मानवीय विकास क्रम से पूर्णतः परिचित थे। समन्वयवाद का सिद्धान्त सबसे विशद् रूप में उन्हें भारतीय संस्कृति में मिला, उन्होंने उसे वहां से उठाकार आधुनिक युग की विषमता के समाधान कारक उपयुक्त सांचे में ढालकर अपने काव्य में उतार दिया।

जड़ और चेतन को लेकर जो विवाद प्रसाद के समय में चल रहा था उसका समन्वय उन्होनें अति सुन्दरता से किया। मानव संस्कृति मात्र जड़ता का इतिहास नहीं है प्रसाद ने उसे चेतना का ऐसा सुन्दर इतिहास कहा है जिसमें अखिल, सम्पूर्ण मानवीय भाव सत्य है। मनुष्य की चेतना ने अपने विकास में उन्हें प्राप्त किया है, सुन्दर इसलिए कि उनसे विकास होता है–प्रसाद जी ने कवियों की वैदिक परम्परा में उद्घोष लिया –

''चेतना का सुन्दर इतिहास
अखिल मानव भावों का सत्य
विश्व के हृदय पटल पर दिव्य
अक्षरों से अंकित हो नित्य''[2]

अर्थात चेतना का सुन्दर इतिहास जो सम्पूर्ण मानवीय भावों का सत्य है, विश्व के हृदय पटल पर दिव्य अक्षरों से अंकित हो अर्थात सम्पूर्ण भाव ग्राह्य तो होने ही चाहिए साथ ही उनमें श्रेय और प्रेय का निरंतर समन्वय रहना चाहिए।

प्रसाद युग में नृतत्व विज्ञान एक सीमा तक विकसित हो चुका था समाज विज्ञान सम्बन्धी पाश्चात्य चिन्तन निरन्तर गतिशील था, डार्बिन से लेकर मार्क्स तक विश्व इतिहास की भौतिक व्याख्या अपने उत्कर्ष पर थी। ऐसी सामिग्री का संकलन किया गया जिससे कि यह सिद्ध किया कि मानव जाति का उदय पूर्णतः प्राकृतिक है, वह किसी विशिष्ट सर्जना का कार्य नहीं है। डार्बिन के यांत्रिकतावादी दर्शन के आधार पर विविध जातियों का अध्ययन सम्भव माना गया इस प्रकार 20 वी शताब्दी में मानवीय विकास और मनोविज्ञान का भौतिक चिन्तन बहुत आडम्बर के साथ प्रस्तुत किया। इन भौतिकतावादी और यांत्रिकतावादी दर्शनों की उत्कर्ष तथ्य विवेचना में मानवीय इतिहास और संस्कृति की जड़वादी व्याख्या प्रस्तुत होने लगी। चैतन्य का मूल आधार जड़ता को मान लिया गया। वैज्ञानिक अनुसंधानों के द्वारा प्रकृति पर विजय पाने का दम्म लेकर मनुष्य ने विजयी बनने का मार्ग खोज लिया जड़बुद्धिवाद मनुष्य के अहंकार का रक्षकर बनकर सामने आया। प्रसाद जी ने इस तथ्य पर इस प्रकार प्रकाश डाला है–

हॉ– तुम ही हो अपने सहाय
जो बुद्धि कहे उसको न मान फिर किसकी नर शरण जाय
जितने विचार संस्कार रहे उनका न दूसरा है उपाय
यह प्रकृति परम रमणीय अखिल ऐष्वर्य भरी शोधक विहीन
तुम इसका पटल खोलने में परिकर कसकर बन कर्मलीन
सबका नियमन शासन करते बस बढ़ा चलो अपनी क्षमता
तुम ही इसके निर्णायक हो, हो कहीं विषमता या समता
तुम जड़ता को चैतन्य करो विज्ञान सहज साधन उपाय[3]

इस अहंकार पर व्यंग्य करते हुये प्रसाद जी आगे कहते है –

हंस पड़ा गगन वह शून्यलोक
जिसके भीतर बसकर उजड़े कितने ही जीवन मरण शोक[4]

स्वष्ट है कि प्रसाद मानवीय संस्कृति के स्वस्थ विकास में बाधक जड़ यांत्रिकता के विरोधी थे।

प्रसाद जी संस्कृति का अर्थ परम्परा, पुरातनता या अपरिवर्तनशील स्थिर पदार्थ के रूप में नहीं लेते, संसृति का यह अर्थ तो संस्कृति और समाज के विकास में बाधक बनकर व्यक्ति के मस्तिष्क को संकुचित कर उसे अगतिकामी बना देगा, वह किसी भी प्रगतिशील प्रभाव को ग्रहण करने में असमर्थ होगा। इस तथ्य को श्रद्धा सर्ग में बहुत की कलात्मक ढंग से व्यक्त किया है–

प्रकृति के यौवन का श्रंगार, करेंगे कभी न बासी फूल
मिलेंगे वे जाकर अति शीघ्र आह उत्सुक है उनकी धूल
पुरातनता का यह निर्मोक सहन करती नन प्रकृति पल एक
नित्य नूतनता का यह आनन्द किये है परिवर्तन में टेक।

प्रकृति के समान संस्कृति में ही देशकाल परिस्थिति के अनुसार अभिनवता का आना आवश्यक हैं जिस प्रकार प्रकृति पुरातनता के निर्मोक को एक पल भी सहन नहीं कर सकती उसी प्रकार समाज भी प्रगति में बाधक रूढ़ियों परम्पराओं नियमों एवं सिद्धान्तों को त्यागने में तनिक भी संकोच नहीं करता। क्योंकि देश काल परिस्थिति की आवश्यकतानुसार सभी संस्कृतियों के तत्व, नियम, विधि–विधान बदलते रहे है किन्तु उनके मौलिक प्राथमिक तत्व स्थिर रहते है वे दूसरी संस्कृतियों से प्रभावित होते हुये भी दूसरी संस्कृति को प्रभावित करते रहते है।

किसी भी देश की संस्कृति के भीतर उस देश के सामाजिक, धार्मिक राजनीतिक, शैक्षणिक, बौद्धिक, नैतिक, आर्थिक मूल्य निहित रहते है। प्रसाद जी ने कामायनी में उपर्युक्त मूल्यों की प्राप्ति का पथ श्रद्धा के द्वारा बताया है। समन्वयवाद जोकि भारतीय संस्कृति की मुख्य विशेषता है, श्रद्धा के चरित्र में सर्वत्र दिखायी पड़ती है। निराशावाद या दुखवाद भारतीय संस्कृति की दृष्टि से अवास्तविक जीवन तत्व है श्रद्धा अपने जीवनके दुखतम क्षणों में भी निराश नहीं होती वह जड़ नहीं होती सदैव चेतन ही रहती है और आशा व आनन्द का आश्रय लेकर कर्म–पथ पर निरन्तर अग्रसर होती है वह मनु को भी अहंभाव और एकान्तिक स्वार्थ की संकीर्ण परिधि से उपर उठकर त्यागमय कर्मपथ पर अग्रसर होने का उपदेश देती है यही भारतीय संस्कृति का मूल स्वर है।

अपने में सब कुछ भर कैसे, व्यक्ति विकास करेगा।
यह एकान्त स्वार्थ भीषण है अपना नाश करेगा।
रचना मूलक सृष्टि यज्ञ यह यज्ञ पुरूष का जो है
संसृति सेवा भाग हमारा उसे विकसने को है।8

श्रद्धा और मनु के दाम्पत्य जीवन के द्वारा कवि ने यह बताने का प्रयास किया है कि पति पत्नी का सांस्कृतिक संघर्ष कभी सुखप्रद नहीं होता। मात्र इन्द्रिय सुख ही दाम्पत्य जीवन का लक्ष्य नहीं है, नारी की आत्मा का दर्शन कर स्वस्थ कौटुम्बिक भावना लेकर प्रेमपूर्वक पारिवारिक कर्तव्य का निर्वाह और विश्व परिवार में अपने को समायोजित कर देना ही सफल कुटुम्ब भावना है।

श्रद्धा जैसे ही आत्म समर्पण करके मनु की सहायता करने को उद्यत होती है और मनु के समीप ही गुफा में रहने लगती है, वह एक कुटुम्ब का निर्माण करती है धीरे धीरे कुटुम्ब का विस्तार

होता है अन्तिम आनंद सर्ग में सभी इड़ा सारस्वत नगरवासी मनु कुमार आदि सभी उसके वृहत कुटुम्ब के सदस्य बन जाते है इतना ही नहीं वसुधैव कुटुम्बकम् के आधार पर सारा विश्व ही उस उदार आश्रमवासी श्रद्धा का कुटुम्ब बन जाता है।

हम एक कुटुम्ब बनाकर यात्रा करने है आये
सुनकर यह दिव्य तपोवन जिसमें सब अद्यं छुट जाये।[7]

सृष्टि के आरम्भिक काल में मानव फल फूल बीनकर और शिकार कर अपनी क्षुधा शान्त करता था फिर धीरे धीरे उसका विकास हुआ वह पशुओं को पालने लगा और वन्य भूमियों में धान गेहूं जौ आदि अन्न के बीजों को बीनकर और उन्हें बोकर खेती करने लगा। कामायनी में श्रद्धा को पशु और धान्य का संचार करते हुये शालियां बीनकर अनय अन्न एकत्र करते हुए तथा बीजों का संग्रह करते दिखाया है। इस कृषि संस्था का पूर्व विकास स्वप्न सर्ग में दिखाया गया है

खेतों में है कृषक चलाते हल प्रमुदित श्रम खेत सने

ईर्ष्या सर्ग में श्रद्धा को ग्राहस्थ कर्म में रत दिखाकर गृह उद्योग संस्था का पूर्व विकसित रूप स्वप्न सर्ग में दिखाया है। ईर्ष्या सर्ग में श्रद्धा पशुओं की ऊन कातती है दूध निकालती है– सुन्दर कुटीर का निर्माण करती है तथा तकलीय उन कातती है।

उस गुफा समीप पुआलों की छाजन छोटी सी शांति पुंज
कोमल लतिकाओं की डालें मिल सधन बनाती जहां कुंज
ये वातामन भी कटे हुये प्राचीर पर्णमय रचित शुभ्र
आवें क्षण भर तो चले आयें रूक जाये कहीं न समीर आ
उसमें था भूला पड़ा हुआ वेतली लता का सुरूचिपूर्ण
बिछ रहा धरातल पर चिकना सुमनों का कोमल सूरभिचूर्ण।
मैं बैठी गाती हूँ तकली के प्रतिवर्त्तन में स्वर विभोर
चल री तकली धीरे धीरे प्रिय गये खेलन को अहेर।[9]

'स्वप्न सर्ग' में धातु गलना, आभूषण वस्त्र बनाना, पुष्प चुनना, गन्ध चूर्ण बनाना लोहे के पदार्थ बनाना आदि का उल्लेख मिलता है–

उधर धातु गलते, बनते है आभूषण ओ अस्त्र नये,
कहीं साहसी ले आते है मृगया के उपहार नये
पुष्पलावियां चुनती है वन कुसुमों की ऊध विकच कली
गन्ध चूर्ण या लोध्र कुसुम रज, जुटे नवीन प्रसाधन थे।[10]

प्रसाद ने सांस्कृतिक धरातल पर एक ऐसे विकसित आदर्श समाज की कल्पना की है जो वर्गहीन हो, जिसमें कोई भी शापित या तापित न हो सभी समता का जीवन व्यतीत करते हो –

मनु ने कुछ मुसक्या कर कैलाश और दिखलाया
बोले देखों कि यहां पर कोई भी नहीं पराया
हम अनय न ओर कुटुम्बी हम केवल एकहमीं है

तुम सब मेरे अवयव हो जिसमें कुछ नहीं कमी है
शापित न यहां है कोई तापित पापी न यहां है
जीवन वसुधा समतल है समरस है जोकि जहां है।

भारतीय दर्शन में जीवित दशा और प्रलीन दशा में तात्विक अन्तर नहीं होता, क्योंकि समरसता की अवस्था में यह भेद समाप्त हो जाता है यह परम स्वरूप है यही आरम्भ बिन्दु है और यही अंतिम लक्ष्य भी, यही स्वरूप प्रसाद को मान्य रहा इसमें कहीं अहंता का बोध नहीं यहां प्रसाद ने द्वैत को अमान्य किया है –

अपना ही अणु–अणु, कण–कण
द्वपता ही तो विस्मृति है।[12]

यही जिजीविषा जीवन के राग में बदलकर उत्साह का रूप देती है और आशा बनकर आती है।

जीवन! जीवन! की पुकार है लेत रहा है शीतल दाह,
किसके चरणों में नत होता नव प्रभात का शुभ उत्साह[13]

विदेशी प्रभावों के आक्रान्त तदवगीन विकृत कामवृत्ति का संस्कार कर प्रसाद ने भारतीय परम्पराओं के अनुसार काम का विस्तृत अर्थ प्रस्तुत किया। फ्रायड ने जिस काम को मात्र मनोदेहिक व्यापार कहा प्रसाद ने उसे मंगल मंडित श्रेय बताया – काम मंगल से मंडित श्रेय सर्ग, इच्छा का है परिणाम।14 यहां वह गीत से प्रेरणा लेते है जहां धर्म संगत काम को ईश्वर का रूप बताया गया है। जिस काम वे मंगल से मंडित मानते है उसी को वे कामायनी कहते है।

वह कामायनी जगत की मंगल कामना अकेली,
श्री ज्योतिृमती प्रफुल्लित मानस तट की बनबेली।
वह विश्व चेतना पुलकित थी पूर्ण काम की प्रतिमा
जैसे गंभीर महाप्रद हो भ्रा विमल जल महिमा।[15]

प्रसाद जी ने कामायनी में भारतीय संस्कृति में व्याप्त अहिंसा के व्यापक सिद्धान्त को विस्तार दिया है। कुटिलता का सामना सहृदयता से ही करना चाहिए। अपनी अहिंसावादी प्रवृत्तियों के द्वारा श्रद्धा हिंसक विलास प्रिय छली कपटी मनु को अपराधी नहीं कहती उससे घृणा कर तिरस्कृत नहीं करती अपितु उसके हृदय का परिष्कार करने का प्रयत्न करती है। हृदयवादी और बुद्धिवादी संस्कृति की तुलना में हृदयवादी संस्कृति को श्रेष्ठ दिखाने का प्रमुख उद्देश्य है जीवन को स्वस्थ एवं समुचित उपासना प्रसाद के सांस्कृतिक उत्थान के स्तर अतीत, वर्तमान, भविष्य तीनों के समन्वयात्मक संश्लेषण में मुखरित हुए है। वे न तो पुरातन की दुहाई देते है न नवीन के प्रति विशेष आग्रह दिखाते है और न मात्र भविष्य की चिन्ता में ही लीन रहते है वरन् देश काल परिस्थिति के अनुसार जनता की चित्त वृत्तियों को जीवन के सामाजिक प्रश्नों की ओर आकृष्ट करते हुए पूर्णतम् जीवन के पक्षों की ओर उन्मुख किये रहते है।

कामायनी' के अतिरिक्त प्रसाद के काब्य में यत्र–तत्र छुट पुट कविताओं में सांस्कृतिक उत्थान के स्वर झंकृत हुए है। अशोक की चिन्ता और प्रलय की छाया कविताओं की प्रेरणा भारतीय इतिहास से ली गयी है। इनमें सांस्कृतिक स्वर विद्यमान है– परन्तु अंश रूप में ही –

यह सुख वैसा शासन का
शासन रे मानव मन का
गिरि भार बना सा तिनका,
यह घटाटोप दो दिन का
फर रवि शशि किरणों का प्रसंग
सांस्कृतिक विक्षत पग रे
यह चलती है डगमग रे
अनुलेप सदृश तूल आत्मा रे
मृदुदल बिखेरे इस मग रें
कर चुके मधु मधुपान भृंग।
भुनती वसुधा तमते नग
दुखिया है सारा अग जग
कटक मिलते है प्रति पग
जलती सिकता का यह मग
बह जा धन करूणा की तरंग।15
जलता है यह जीवन पतंग।

कलिंग विजय में हुये भीषण नरसंहार को देखकर सम्राटा अशोक की व्यापक अहिंसावादी भावना जाग गयी उसे संसार की क्रूरताओं से विरक्ति हो गयी और फिर उसने अपने जीवन में कोई युद्ध नहीं किया।

''सांस्कृतिक पुनरूत्थान की स्पष्ट रेखायें कामायनी में ही मिलती है। कामायनी में मानव संस्कृति की विजय घोषित की गयी है।''16

संदर्भ

1. सिंह, डा0 रामलाल. कामायनी अनुशीलन. पृष्ठ **204.**
2. कामायनी. श्रृद्धा सर्ग. पृष्ठ **62.**
3. कामायनी. 'प्रहार सर्ग'. पृष्ठ **64.**
4. कामायनी. 'प्रहार सर्ग'. पृष्ठ **64.**
5. श्रृद्धा सर्ग. पृष्ठ **50.**
6. कामायनी. कर्म सर्ग. पृष्ठ **129.**
7. कामायनी. आनन्द सर्ग. पृष्ठ **263.**
8. कामायनी. स्वप्न सर्ग. पृष्ठ **74.**
9. कामायनी. ईष्या सर्ग. पृष्ठ **144–145.**
10. कामायनी. स्वप्न सर्ग. पृष्ठ **174.**

11. कामायनी. आनन्द सर्ग. पृष्ठ **264.**
12. कामायनी. आनन्द सर्ग. पृष्ठ **255.**
13. कामायनी. आशा सर्ग. पृष्ठ **37.**
14. कामायनी. श्रृद्धा सर्ग. पृष्ठ **158.**
15. प्रसाद, जयशंकर. लहर. पृष्ठ **45—49.**
16. शंकर, डा. प्रेम. प्रसाद का काव्य. **46.**